हरिऔध की साहित्यिक दृष्टि एवं मौलिक उद्भावनाएँ

प्रमोद कुमार मिश्र

किसी भी कवि या लेखक के साहित्यिक दृष्टिकोण को जानने के लिए उसके सम्पूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि बिना सम्पूर्ण अध्ययन के उसकी साहित्य सम्बन्धी दृष्टि का पूर्ण रूप में आंकलन संभव नहीं हो पाता है। लेखक रमाशंकर पाण्डेय ने लिखा है ''हिन्दी साहित्य के विभिन्न लेखकों, कवियों के साहित्यिक दृष्टिकोण का परिचय उनके साहित्य में वर्णित सिद्धान्तों, विचारों आदर्शों इत्यादि को जानकर ही पाया जा सकता है। उदाहरण के लिए प्रसाद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, प्रकृति–चित्रण पन्त के काव्य में, निराला के काव्य में महान शक्ति, महादेवी वर्मा के काव्य में वेदना का प्राधान्य है। जिस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त भारतीय जीवन के कवि हैं तो हरिऔध जी नैतिकता, सांस्कृतिक, चेतना खड़ी बोली के प्रयोक्ता कवि हैं। हरिऔध के साहित्य में सर्वत्र नैतिकता का प्रसाद है।''[1] वास्तव में हरिऔध जी जिस युग में उत्पन्न हुए वह युग आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संयम सिद्धान्त पर पराकाष्ठा का युग था। ऐसी स्थिति में संयम एवं नैतिकता का प्रभाव किसी भी साहित्यकार पर न पड़े यह संभव नहीं। डॉ0 किशोरी लाल ने लिखा है ''आचार्य द्विवेदी की नैतिकता एवं संयमवादिता का प्रभाव इतना अधिक था कि छायावाद के कवियों को यह भारस्वरूप प्रतीत होने लगा। किन्तु छायावाद के युग में जीवन व्यतीत करते हुए हरिऔध जी के जीवन में तनिक भी परिवर्तन नहीं हो सका। नैतिकता के जिस पथ पर वे चले, उसी पथ पर वह अग्रसर होती गई।''[2]

कालिदास के बाद श्रृंगार कवियों में जयदेव और विद्यापति तथा हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियों ने राधा माधव के बहाने साहित्य में जिस अश्लील धारा को प्रवाहित किया हरिऔध जी उससे पूर्व परिचित थे। हरिऔध जी ने स्वयं को इस धारा से पृथक रखते हुए 'प्रियप्रवास' में राधा कृष्ण का जो लोक सेवक एवं लोकरंजक रूप रखा वह अत्यन्त दुर्लभ है। श्री संत बख्श सिह ने लिखा है, ''प्रिय–प्रवास काव्य में साहचर्य जन्य प्रेम, लोक कल्याण की भावना, सेवा का निरन्तर विचार, जीवन में आनन्दमय भावना का प्रसाद सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। हरिऔध ने अपने दोनों महाकाव्यों 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' में जिस चरित्र को अपनाया है। वह सदाचार का सम्पूर्ण रूप है। हरिऔध ने दोनो महाकाव्यों में सदाचार की जाह्नवी प्रवाहित की है। राम और कृष्ण दोनों महापुरुषों का जीवन लोक–कल्याण में बीता है। उन्होंने प्रजा पीड़कों का दमन कर देश में शान्ति की स्थापना की। उनके जीवन का लक्ष्य ही सदाचार को स्थापित कर कदाचार का उन्मूलन करना था। काव्य का उद्देश्य ही है शिवेतर तत्व की रक्षा करना जिसकी पूर्ति उक्त दोनों काव्यों से हो जाती है।''[3]

काव्य का उद्देश्य सद्यः पर निवृत्तये भी है अर्थात् काव्यों के माध्यम से आनन्दमय अनुभूति का होना नितान्त आवश्यक है। हरिऔध जी ने अपने काव्य में इस दृष्टिकोण को अपनाया है। इनकी रचनाओं में नायक और नायिका लोक–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत हैं। गिरजादत्त शुक्ल गिरीश ने लिखा है, ''जहाँ कृष्ण दानवीय शक्ति के शमन के लिए अपनी मातृभूमि को छोड़कर जीवनपर्यन्त दुष्टों का दमन करते रहे वहीं राधा के प्रेम में संपृक्त होकर जनसेवा का कार्य करते रहे दूसरी ओर 'वैदेही वनवास' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम अपनी प्राण प्रिया सीता को प्रजा के सन्तोष के लिए वन भेज देते हैं। परित्यक्ता सीता वन में जाकर भी गृहस्थ और दाम्पत्य प्रेम का जो पावन उपदेश देती हैं उससे सामान्य जन को भी प्रेरणा मिलती है।''[4]

लेखक रमाशंकर पाण्डेय कहते हैं कि हरिऔध जी के साहित्यिक दृष्टिकोण में एक और भावना दिखायी देती है और वह है असत का विनाश और सत् का प्रचार। दोनों महाकाव्यों में नायक असत् के विनाश तथा सत् के प्रसार की ओर अग्रसर दिखाई पड़ते हैं। उनके सत् का प्रकाश उनके उज्जवल चरित्रों के माध्यम से व्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त 'चोखे चौपदे' तथा चुभते चौपदे' में भी हरिऔध जी ने असत् के विनाश का निरन्तर प्रयास किया है। अपने चौपदों में हरिऔध जी ने सुन्दर से सुन्दर शिक्षायें दी हैं, उत्तम और संवेदनशील समाज की परिवार के विभिन्न सदस्यों के अन्तराल में सद्गुणों के समावेश की अभिलाषा प्रकट की है। साहचर्य जन्य प्रेम का प्रकाश जीवन में अद्भुत शक्ति रखता है। महाकवि हरिऔध ने इस तथ्य के प्रकाश में सम्पूर्ण प्रियप्रवास का कथानक वर्णित किया है।

हमारे मनीषियों ने जगत के कण–कण में चेतना का अनुभव किया। उन्होंनें मान लिया था कि प्रकृति की सम्पूर्ण वस्तुएँ मानव के समान व्यवहार करती हैं। वे मानते थे कि प्रकृति की शक्तियाँ मानव के समान क्रुद्ध एवं प्रसन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्राकृतिक वस्तुओं मैं दैवीय स्वरूप का भावन किया है। प्रकृति को चैतन्यपूर्ण माना गया है इस विचार को आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक स्वीकृति प्राप्त है। यह दृष्टिकोण हरिऔध के काव्य में भी प्रतिफलित हुआ है। 'प्रियप्रवास' में विरहिणी राधा ने पवन को अपना दूत बनाया है और अनेकानेक संदेशों को ले जाने के लिए कथन किया है। हरिऔध जी ने वृक्षों को मानव के समान चित्रित किया है और उन्हें अनेक भावनाओं से उत्पन्न माना है यथा–

''स्वअंक में पत्र प्रसून मध्य में, लिये फलों ब्याज सुमुर्ति शम्भु की
सदैव पूजारत अनुराग था, विलोलता वर्जित वृक्ष विल्व की।।[5]

आधुनिक विचार के लोगों को यह प्रिय नहीं कि पंक्ति–पंक्ति में कृष्ण को ब्रह्म लिखा जाय और वह जनसाधारण से दूर हों। हरिऔध जी ने अपने साहित्य में कृष्ण का मनवीय रूप प्रदर्शित किया है। हरिऔध जी ने अतिमानवीय कार्यों को मानवीय रूप देने का प्रयास किया है। उन्होंने कृष्ण द्वारा पर्वत उठाने की घटना को एक मुहावरे के रूप में प्रस्तुत किया है। मुहावरे का रूप देकर हरिऔध जी ने अविश्वसनीय घटना को विश्वसनीय बना दिया है। रमाशंकर पाण्डेय ने लिखा है– ''महाकवि हरिऔध भारतीय समाज को संयमित देखना चाहते थे। समाज की अनीति, अनाचार उच्छृंखलता उन्हें कदापि सहन नहीं थीं 'वैदेही–वनवास' में इसी सामाजिक उच्छृंखलता के उन्मूलन के लिए उन्होंने सीता के द्वारा दाम्पत्य प्रेम परम्परा पर एक गम्भीर एवं सहृदयतापूर्ण भाषण दिलवाया है। लंका की सभ्यता को आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का रूप देकर पति–पत्नी के परिणय सम्बन्ध को एक पवित्र रूप देने का प्रयास किया है। कृत्रिमता और भौतिकता के बहिष्कार द्वारा आध्यात्मिकता के प्रसाद को आवश्यक माना है।''[6]

हरिऔध साहित्य सर्जना के क्षेत्र में विभिन्न रूपों में हमारे समक्ष आते हैं। कृत्रिमता के लिए उनमें लेशमात्र भी जगह नहीं। वास्तविक उद्भावनाओं को ही उन्होंने अपने साहित्य का आधार बनाया। नाटक, उपन्यास, काव्य, इतिहास, आलोचना साहित्य का कोई अंग उन्होंने अछूता नहीं छोड़ा। उनकी ख्याति का मूल आधार उनकी रचना 'प्रियप्रवास' हे जिसमें उनकी प्रतिभा अपने मौलिक उद्भावनाओं के जरिये चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गई है। उनकी प्रतिभा का सर्वाधिक परिचय वहाँ मिलता है जहाँ–जहाँ उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति से काम लिया है।

काव्य रचना में कवि की मौलिक उद्भावनाओं का स्थान महत्वपूर्ण होता है। इनके अभाव में नवीनता संभव नहीं है। इस दृष्टिकोण से यदि हम हरिऔध जी की कृतियों की समीक्षा करें तो हमें स्थान–स्थान पर उनकी मौलिकता के दर्शन होंगे। रामध्वज सिंह ने लिखा है, ''रसकलश में नायिका भेद के प्रसंग में जहां वे नायिकाओं के परम्परागत तथा शास्त्रीय भेदों का वर्णन करते हैं वहीं आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर कतिपय नवीन नायिकाओं का चित्रण भी करते हैं। जाति प्रेमिका, देशप्रेमिका, जन्मभूमि प्रेमिका लोक सेविका नायिकाओं की कल्पना हिन्दी काव्य में नितान्त नवीन है।''17

आगे भी वह लिखते हैं कि रचना शैली में भी हरिऔध ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। जिस समय हिन्दी काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग शुरू हुआ उस समय यह विचार व्यापक रूप से फैला था कि सुन्दर कविता की रचना खड़ी बोली में नहीं हो सकती क्योंकि उसमें ब्रजभाषा जैसा माधुर्य तथा लोच नहीं है। ऐसे भ्रान्ति युक्त वातावरण में जब खड़ीबोली भाषा के कविता में प्रयोग पर समाज को सन्देह था तब हरिऔध जी ने शुद्ध खड़ी बोली में 'प्रियप्रवास' काव्य की रचना करके यह प्रमाणित कर दिया कि हिन्दी में भी सरस काव्य की रचना हो सकती हैं। प्रियप्रवास से पूर्व खड़ी बोंली हिन्दी का कोई काव्य नहीं था केवल गुप्त जी का एकमात्र खण्ड–काव्य 'जयद्रथ वध' था। आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी में महाकाव्य के श्री गणेश का श्रेय हरिऔध जी को ही प्राप्त है।

''प्रियप्रवास'' रचना से पूर्व हिन्दी में भिन्न तुकान्त कविता का अभाव बना हुआ था। इस अभाव की पूर्ति हरिऔध जी के द्वारा हुई। 'प्रियप्रवास' की भाषा में भी हरिऔध जी ने अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का परिचय दिया है। संस्कृत वृत्तों के लिए संस्कृत भाषा अधिक अनुकूल पड़ती है इसी कारण उन्होंने संस्कृत बहुत भाषा को ग्रहण किया।

हरिऔध जी की मौलिक उद्भावनाओं के दर्शन हमें उनके चरित्रों में होते हैं। 'प्रियप्रवास' के राधाकृष्ण अपने परम्परागत रूप से नितान्त भिन्न हैं। प्रियप्रवास में राधाकृष्ण न तो अलौकिक हैं न ही विलासी वरन् हमारे ही आदर्श समाज के व्यक्ति हैं। विश्वनाथ लाल शैदा ने लिखा है, ''रीतिकालीन कवि राधा को श्रृंगारिक दृष्टि से देखते हैं। रीतिकालीन राधा विलासिनी रसिक एवं चंचल प्रवृत्तिवाली हैं। राधा का यह परम्परागत रूप है। हरिऔध जी की राधा प्रेम एवं कर्त्तव्य की भावना से परिपूर्ण सर्वश्रेष्ठ रमणी एवं आदर्श लोक सेविका है। प्रिय प्रवास की लोक प्रिया राधा अपने जीवन के प्रति जब वह उद्गार व्यक्त करती है कि– 'त्वारे जीवे जग हित करें गेह चाहे न जाओ' तब उनकी लोक हितैषी भावना का पुष्ट प्रमाणा स्वयमेव मिल जाता है। राधा लोक दुःख से दुःखी हैं। उन्हें अपने दुःख का उतना विचार नहीं है जितना कि ब्रजवासियों के दुःख का है। राधा के लोकहित की यह भावना मानव जाति तक ही सीमित नहीं। कवि ने राधा के माध्यम से सामान्य प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है। राधा अपनी लालसाओं को प्रिय की आकांक्षाओं की लव में एक करके देखती है। अपने प्रिय की लोक सेवा में सहायक बन जाती हैं प्रकृति के नाना रूपों का रूप देखकर प्रसन्न होती है और कहती हैं कि– ''सारें प्राणी अखिल जग की मूर्तियाँ हैं उसी की।''[8]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हरिऔध जी ने राधा का काया कल्प करके उसके परम्परागत वासनाजन्य रूप को परिवर्तित करके संबंधित एवं उदात्त भावों का आरोपण किया है। जीवन के वास्तविक सत्य को कवि ने राधा के माध्यम से दर्शाया है। राधा का उपर्युक्त रूप नितान्त मौलिक है जो हरिऔध जी के साहित्य में हमको प्राप्त होता है। विद्यापति ने अपनी पदावली में कृष्ण का श्रृंगारिक रूप दर्शाया है। सूर में वात्सल्य की प्रधानता रही तो मीरा ने कृष्ण को पति के रूप में देखने का प्रयास किया। अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप को अपनाया। भारतेन्दु जी ने कृष्ण के छबीले रूप का चित्रण अधिक किया। स्पष्ट है कि हरिऔध के पूर्वगामी कवियों की दृष्टि कृष्ण के लोकरक्षक रूप पर नहीं पड़ी। इस प्रकार के अभाव की पूर्ति हरिऔध जी द्वारा हुई। कृष्ण विश्व प्रेम के प्रतीक हैं। हिन्दी के भक्त कवियों ने कृष्ण के ईश्वरत्व को मनुष्य के धरातल पर देखने का प्रयास किया किन्तु हरिऔध जी ने कृष्ण के मनुष्य को ईश्वरत्व की ऊँचाई तक उठा दिया है। कृष्ण

के रूप में उपर्युक्त नवीन कल्पना हरिऔध जी की मौलिकता का परिचायक है। उनके साहित्य के जिस अंग पर दृष्टि डाली जाय वहीं हमें नवीनता का अनुभव होता है। कहना न होगा कि उनकी वह दृष्टि उनके मनोभावों के सर्वथा अनुकूल है।

संदर्भ–सूत्र

1. हरिऔध शती स्मारक ग्रन्थ : डाॅ0 किशोरी लाल गुप्त, हरिऔध का साहित्यिक दृष्टिकोण : पृष्ठ संख्या –350
2. वही, पृष्ठ संख्या, 351
3. हरिऔध और उनका प्रियप्रवास : श्री सन्त बख्श सिंह, पृष्ठ संख्या– 165
4. हिन्दी का कृष्ण काव्य एवं प्रियप्रवास : गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश, पृष्ठ संख्या –151
5. शती स्मारक ग्रन्थ : प्रियप्रवास का पवन दूती प्रसंग– षष्टसर्ग– श्रीमती शारदा राजपूत पृष्ठ संख्या– 211
6. हरिऔध का साहित्यिक दृष्टिकोण : रमा शंकर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या–356
7. हरिऔध की मौलिक उद्भावनाएँ : रामध्वज सिंह, पृष्ठ संख्या–371
8. प्रियप्रवास : एक मूल्यांकन : विश्वनाथ लाल शैदा– पृष्ठ संख्या– 185